ग्लोबल गाँव के देवता

- रणेंद्र

साहित्य और समाज अभिन्न है। साहित्य ने हमेशा ही हाशिए के समाज की वाणी को मुखर किया है। आदिवासी समाज भी पीढ़ी दर पीढ़ी हाशिए पर धकेला गया है। आदिवासी विमर्श के बहाने साहित्य ने आदिवासी समाज के मूलभूत प्रश्नों को उठाया है। आदिवासी प्रकृति प्रेमी है। जंगलों एवं वनों पर उनका पुश्तैनी अधिकार रहा है। अपनी सभ्यता, संस्कृति, आस्था को प्रकृति की गोद में सहेजते हुए वे जीवनयापन कर रहें है। किंतु वैश्वीकरण एवं बाजारवाद ने इनकी जीवन पध्दति को तहस – नहस किया। सरकार ने भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को ध्यान में रखकर इन्हें विस्थापित किया । अब जल, जंगल और जमीन के लिए इनका संघर्ष जारी है। उसमें भी भूमि अधिग्रहण, आर्थिक अभाव, अशिक्षा, बेरोजगारी, भूखमरी, बीमारी, अवैध खनन आदि समस्याएँ इनके जीवन का अभिन्न अंग बनी है। हरिराम मीणा, राकेशकुमार सिंह, संजीव, महुआ माजी, मंगलसिंह मुंडा, मनमोहन पाठक, रणेंद्र आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में इन समस्याओं को मार्मिकता से उठाया है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास भी आदिवासी जीवन संघर्ष का प्रामाणिक दस्तावेज है।

रणेंद्र द्वारा लिखित 'ग्लोबल गाँव के देवता' यह उपन्यास सन 2009 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इसमे असुर जनजाति की कथा – व्यथा अभिव्यक्त हुई है । इसका परिवेश झारखंड राज्य के अंतर्गत आनेवाला कोयलबीघा का भौरापाट गांव है। लेखक ने इस उपन्यास के बहाने असुर समाज की शोषण परंपरा को मुखर किया है। असुर, जिसे कभी इंसान समझा ही नहीं गया। वे धरती से कच्चा लोहा निकालकर उसे पिघलाकर विभिन्न प्रकार के औजार व हथियार बनाने वाले है। उनकी इसी कारीगरी को देखकर उन्हें मायावी समझा गया और राक्षस कहा गया। कपोल कल्पित कहानियों, मिथकों में इनका भयानक चित्र अंकित किया गया है। इस उपन्यास ने असुर समाज को नयी पहचान दी है। उन तमाम मान्यताओं, रूढ़ियों, मिथकों को ध्वस्त किया है, जो इस समाज के विकास में बाधक है। साथ ही शोषक समाज के मुखौटे को उतारकर उन्हें कटघरे में खड़ा किया है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' इस उपन्यास के लेखक रणेंद्र का आदिवासी साहित्य में विशेष योगदान रहा है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता आदि तमाम विधाओं मे सृजन किया है। आदिवासी समाज उनके लेखन के केंद्र में है। उनका संपूर्ण साहित्य आदिवासी समाज के हक एवं अधिकार की वकालत करता है। रणेंद्र को साहित्य – सृजन की प्रेरणा परिवार से ही मिली है। उनका परिवार बिहार राज्य के नालंदा जिले में सोहसराय नामक कस्बे में रहता था । यही पर 10 फरवरी 1960 को रणेंद्र का जन्म हुआ । उनके पिता डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद हिंदी

के प्रसिध्द लेखक एवं अध्यापक थे। साथ ही वे किसान कॉलेज (नालंदा जिला) में हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत थे। उनकी माता का नाम उर्मिला प्रसाद है।

रणेंद्र ने भारत सरकार की कई योजनाओं पर कार्य किया है। झारखंड राज्य के विभिन्न प्रशासकीय पदों पर भी कार्य किया है। सन 1999 से 2004 तक राज्य कार्यालय प्रभारी पदाधिकारी के रूप में उन्हें संपूर्ण राज्य में घुमने का अवसर मिला। इसी बीच आदिवासी समाज, संस्कृति, सभ्यता से उनका निकटतम परिचय हुआ। अब इनकी दर्दभरी अनकही – अनसुनी कहानियाँ लेखक की रचनाओं में आकार लेने लगी। अब तक रणेंद्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' (2009) 'और गायब होता देश' (2014) दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। 'थोडा–सा स्त्री होना चाहता हूँ (2010) नामक कविता संग्रह भी प्रकाशित है। इसके साथ ही 'झारखंड एन्साक्लोपीडिया', 'पंचायती राज : हाशिये से हुकुमत तक' आदि रचनाओं का संपादन कार्य भी किया है । उनका लेखन कार्य आज भी जारी है। हिंदी की तमाम पत्र पत्रिकाओं में उनके अभ्यासपूर्ण एवं वैचारिक लेख प्रकाशित हुए है, हो रहे हैं। दरअसल उनका संपूर्ण साहित्य आदिवासी समाज के इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज है। यह साहित्य उनको लड़ने और संघर्ष करने की उर्जा प्रदान करता है। रणेंद्र को इसी साहित्यिक योगदान के लिए झारखंड राज्य ने सम्मानित किया है।

ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में अभिव्यक्त आदिवासी समस्याएँ

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में असुर आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है। असुर ही नहीं अन्य तमाम आदिवासी जन्म से लेकर मृत्यु तक अभाव का जीवन जीते हैं। सरकारी सुविधाएँ महज कागजों की शोभा बढ़ाती है। इनका शोषण करने में सरकार नें भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। सारे नियम और कानून पूंजीपतियों के हित में बनाए जाते हैं। असुर आदिवासी का जैसे कोई वजूद ही नहीं है । असल में असुर आदिवासी अपनी प्राकृतिक छत्र छाया में खुश है। प्रकृति ही उसका सर्वस्व है। उसकी गोद में वह अपने आपको आश्वस्त एवं महफूज महसूस करता है । किंतु बाहरी समाज ने उनके आशियाने को उजाड़कर उसे छत्रविहीन किया है। उसके ऑचल को समस्याओं की गठरी से भर दिया है।

अब असुर समाज आजीवन इन समस्याओं को ढोने के लिए अभिशप्त है। लेखक ने इस उपन्यास में असुर समाज की तमाम समस्याओं का उद्‌घाटन किया है।

1) विस्थापन :–

असुर समाज परंपरा से ही जंगलों में प्राकृतिक सान्निध्य में रहता आया है। प्रकृति और आदिवासी अभिन्न है। वह पुरखों से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करता आया है। किंतु विकास के नाम पर इनको जबर्दस्ती जंगलों से बेदखल किया गया है। आजादी के बाद 1500 सौ बड़ी सिंचाई के कारण 1.6 करोड़ की आबादी विस्थापित हुई है, जिसमे 40 प्रतिशत से भी अधिक आदिवासी थे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भी खनिज, वनोपज, जल, भूमि आदि को हथियाने के लिए सरकार से साठगांठ कर ली है। भूमि अधिग्रहण, वन कानून के चलते आदिवासी विरोध भी नहीं कर पाते । विस्थापन का एकमात्र विकल्प उन्हे दिया जाता है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' इस उपन्यास में लेखक ने इसी समस्या को उठाया है। उपन्यास में ऐतिहासिक पाथरपाट स्कूल का उल्लेख मिलता है। यह बसाया गया था आदिवासी समाज के बच्चों को पढ़ने के लिए किंतु उसमें एक भी आदिवासी प्रवेशित नहीं है। स्कूल बनाने से पहले इस जगह पर कई असुर परिवार हॅसते – खेलते जीवनयापन कर रहे थे । उनके घरों को उजाड़कर यह स्कूल बनाया गया था। इस संदर्भ में रूमझुम लेखक को बताते हैं **''असुरों के सौ से ज्यादा घरों को उजाड़कर बना था यह स्कूल। अभी भी आसपास असुर आबादी है। ज्यादा – दूर नही बीस – बाईस किलोमीटर के दायरे में लगभग सारी की सारी असुर, बिरिजिया, कोरबा आबादी बसती है।'' (पृ.19)** असुर परिवार को विस्थापित करके स्कूल बनवाया गया था । कोयलबीघा अंचल में आनेवाली जमीनें कई कंपनियों ने बॉक्साईट निकालने के लिए जबर्दस्ती अपने नाम पर कर ली थी। इसीलिए खेतीहर से मजदूर में परिवर्तित हो रहीं बड़ी आबादी यहॉ जन्म ले रहीं है।

वन कानून ने भी असुर समाज को भूमिहीन बनाया है। क्योंकि उनकी नजर में पशुओं की कीमत अधिक है। पशुओं की कम हो रही संख्या से सरकार चिंतित है। उन्हें बचाना एवं संरक्षण देना अपना कर्तव्य समझती है। मगर आदिवासी तो इनकी गिनती में है ही नहीं । उसके जीने मरने से किसको फर्क पडनेवाला है ? कौन सरकार से प्रश्न करनेवाला है ? यही वजह है सखुआपाट के आसपास के परिवेश में रहनेवाले लोगों के भीतर गहरा आतंक छाया है। चेहरे से हॅसी गायब है और आंखे उदास है। क्योंकि वन विभाग ने सैंतीस वन – गॉवों को खाली करने का आदेश दिया है। अपनी पुश्तैनी विरासत को छोड़कर असुर कहाँ जाएँगे वे कैसे जियेंगे इससे वन प्रशासन को कोई लेना – देना नहीं है। वे तो बस असुरों को भगाकर वन क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। इस निर्णय से लालचन दा,

बुधनी दी, डॉ. रामकुमार सहित सभी लोग अचंभित एवं सदमे में है। तब डॉक्टरसाब वन विभागद्वारा सरकार को बहुत पहले भेजी गयी रिपोर्ट की जानकारी देते हैं। रिपोर्ट के अनुसार **''लगभग चौंसठ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पहले भेडियें की संख्या सात सौ अट्ठासी हुआ करती थी वह घटती – घटती एक सौ छिहत्तर रह गयी है। तैंतीस पेज तो खाली इन भेड़ियों की खास नस्ल पर ही लिखा है, तब यह बताया गया है कि इनका बचाया जाना कितना जरूरी है।''**(पृ.79) इस रिपोर्ट के परिणाम स्वरूप वन विभाग ने भेड़ियों की संख्या को बढ़ाने के लिए जंगल के असली मालिक असुर एवं अन्य आदिवासियों को अपनी जगह छोड़ने का आदेश दिया था। यह ऐसा समाज है जिनका वर्तमान और भविष्य भी अंधेरे में है । पहले ही कई एकड़ जमीनों पर अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों ने अपना डेरा जमाया है। अब बचे कुचे आदिवासियों को भी षडयंत्र के तहत विस्थापित होने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

2) महामारी :–

असुर समाज अभाव एवं तंगहाली में जीवन जी रहा है। संपूर्ण अंचल में सरकारी सुविधाओं की हालत खस्ता है। अंचल में स्थित अरबों – खरबों रूपए कमानेवाली कंपनियॉ असुर समाज के विकास के लिए एक रूपया भी नहीं खर्च करती है। उन्हे तो बस अवैध खनन करके प्राकृतिक दोहन करना है। इन्हें बॉक्साईट से मतलब है। शिंडाल्कों जैसी दर्जनों कंपनियाँ जमीन को चीरकर बॉक्साईट निकालती है और ट्रकों में लादकर ले जाती है । इस के लिए बड़े गड्ढे खोदे जाते हैं। लेकिन गड्ढों को भरना, सड़क की मरम्मत करना यह अपना काम नहीं समझती । इन्हीं गड्ढों में पानी भरकर महामारी फैलती है। जैसे **''पिछले पच्चीस – तीस सालों में खान मालिकों ने जो बड़े – बड़े गड्ढे छोडे हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल–मलेरिया यहॉ के लिए महामारी है, महामारी।'' (पृ.13)**इन गड्ढों में पलनेवाले मच्छरों से समाज में कई बीमारियाँ फैली है। कई बच्चे जन्म लेते ही इन बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। बूढे और बुजुर्गों के मौत की तो कोई गिनती ही नही हैं। यहाँ न क्लीनिक है न बड़ा अस्पताल । रामकुमार जैसे कुछ दयावान डॉक्टर है, जो बिना स्वार्थ एवं मुनाफे के असुरों की सेवा करते हैं। लेकिन महामारी को रोकने के लिए संसाधन भी आवश्यक होते हैं। कंपनी करार करते वक्त असुरों को पानी, मजदूरी, अस्पताल की सुविधा मुहैया कराने का आश्वासन देती है। किंतु स्वार्थ के दलदल में भूल जाती है। अब इस तरह की महामारियाँ भी असुर समाज के जीवन का अविभाज्य अंग बनी है।

3) शिक्षा :–

लेखक ने उपन्यास के माध्यम से शिक्षा क्षेत्र की सच्चाई को उद्‌घाटित किया है। शिक्षा नयी पीढ़ी को शिक्षित एवं स्वावलंबी बनाने का माध्यम है। लेकिन यह शिक्षा चंद लोगों तक सिमट कर रह गयी है। असुर समाज के बच्चों को पढ़ाने के लिए शिक्षा के द्वार खोले गए है, लेकिन असुविधाओं के बीच पल रहे बच्चे इससे वंचित ही है । स्वयं लेखक विज्ञान शिक्षक के रूप में भौरापाट स्कूल में पढ़ाते हैं। यह लड़कियो का स्कूल है। असुर समाज में पल रही लड़कियो को शिक्षा देने हेतु इसे बनवाया है लेकिन उनकी संख्या दस प्रतिशत से अधिक नहीं है। स्कूल की हालत देखकर लेखक स्वयं हैरान है। एक तरफ पाथरपाट का स्कूल है जहाँ उच्च जाति के बच्चों को पढ़ाने के लिए सारी सुविधाएँ मिलती है। छात्रावास की सुविधा देखकर तो ईर्ष्या होगी । लेकिन यहाँ तो अभाव ही अभाव है। लेखक को रूमझुम की बातें याद आती है, जो पाथरपाट स्कूल दिखाने के दौरान कही थी । दोनों स्कूलों में जमीं – आसमां का अंतर था। **जैसे ''यह सब याद आते ही भौरापाट स्कूल सुअर का बखार नजर आता। आधी–अधूरी बिल्डींग, जैसे–तैसे बना हॉस्टेल, मुर्गीखानों जैसा शिक्षक आवास । जहॉ साफ सफाई होनी चाहिए वही सबसे ज्यादा गंदगी । बच्चियों के मेस में कभी झाडू पोंछा लगता था भी कि नहीं । कोई जिम्मेदारी लेने को तैयार नही। केवल मेंस की खरीदारी के लिए मारामारी । असल कमाई वही थी।**'' (पृ.20) यह शिक्षा व्यवस्था का सच है। शिक्षा के नामपर केवल इमारत खड़ी की जाती है। यही वजह है इस आंचल में मुश्किल से कुछ बच्चे उच्च शिक्षा तक पहुंचते हैं। लालचन दा की भतीजी ललिता, रूमझुम, उसका छोटा भाई भीखा, सोमा आदि कुछ नाम ऐसे हैं, जो पढ़े लिखे हैं। अशिक्षा आदमी को गुलाम बनाती है, तो शिक्षा लड़ने का साहस पैदा करती है। व्यवस्था चाहती है कि यह असुर आबादी अनपढ़ रहे ताकि इनका मनचाहा शोषण किया जा सके । लेकिन यह गिने – चुने पढ़े – लिखे लोग ही आगे चलकर लड़ाई का नेतृत्व करते हैं। लेखक जैसे कुछ अध्यापक भी अपने सामाजिक दायित्व को समझते हुए इस समाज के बच्चों को शिक्षा अर्जित करने के लिए प्रेरित करते हैं उनके प्रयास से ही आस – पास के असुर, बिरिजिया एवं कोरबा परिवार की सड़सठ बच्चियों का एडमिशन होता है। लेकिन यह सच है कि सरकारी एवं प्रशासनिक उदासीनता की वजह से कई असुर बच्चे शिक्षा से वंचित है।

4) भूखमरी एवं बेरोजगारी :–

असुर समाज के लिए प्रकृति ही जीने का माध्यम है। वह खेत खलिहान में मेहनत कर अन्न उपजाता है। किंतु जमीन और प्रकृति से बेदखल होने से अब वह मजदूर बन गया है। उसके ही खेत में बने कंपनी पर आश्रित होकर वह जी रहा है। कंपनी भी कम वेतन पर इनसे मजदूरी करवाती है। ऐसे में अपने परिवार का गुजारा करना भी मुश्किल हुआ है।

आय के अन्य स्त्रोत न होने से कभी – कबार खेती भी बेचनी पड़ती है । कंपनी के लोग तो इसी फिराक मे रहते हैं, कब शिकार जाल मे फंसे । ये तो अपने पूंजीपति देवताओं के गुलाम होते हैं। सोमा के बाबा के पास इतने पैसे नहीं है कि वे अपनी बेटी की लाश को अस्पताल से बाहर ला सके । शहरी अस्पताल तो अब पैसे कमाने के माध्यम हो गए है। बिना पैसे के वे तो लाश का भी सौदा नही करते । अतः मजबूरन वे अपना एक एकड़ खेत केवल 5000 में एक खदान के दलाल को बेचते हैं। यह हर असुर परिवार की कहानी है।

वर्तमान समय में दो वक्त की रोटी जुटाना भी असुर के लिए मुश्किल हुआ है। दवा – दारू की तो बात ही छोडिए । प्रतिदिन नया संकट उनके सामने है । उनकी लड़ाई दो तरफा है एक मिल मालिकों से दूसरी अपनी भूख से । वैसे भी जिस घर में मजदूरी करने लायक व्यक्ति नहीं उस घर का दर्द बया नही किया जा सकता। जैसे, **''जिस घर में मजूरी खटनेवाले हाथ रहते वे तो खान खदान में खटकर पेट पाल लेते, किंतु जिन घरों में खटने लायक समाँग नहीं होता उस घर का पेट तो जंगल ही पालता । महुआ, कटहल कई तरह के कंद और साग, सब पेट भरने के काम आते।''** (पृ.24) अब सरकार असुरों को जंगलो में घुसपैठियाँ मानती है। अतः जंगल से मिटनेवाली भूख का जरिया भी बंद हो गया है । ऐसे में कई असुर भूखमरी का शिकार हो रहे हैं।

बेरोजगारी भी भयानक समस्या है। एक तो असुर आबादी बड़े पैमाने पर विस्थापित हो रही है। नयी जगह पर रोजगार के साधन जुटाना मुश्किल हो जाता है। पारंपारिक खेती भी छुट गयी है। अब अंचल में बने बहुराष्ट्रीय कंपनियों में मजदूर के रूप में कुछ अवसर मिलते हैं। लेकिन यहाँ असुर जाति को निम्न दर्जा का ही काम दिया जाता है। ललिता, रूमझुम, सोमा, भीखा पढ़े लिखे युवा है। वे अपने समय के सच को भलीभॅाति पहचानते हैं। शोषकों की खोखली प्रवृत्ति एवं स्वार्थी वृत्ति से वे परिचित है। उनका मेहनत पर विश्वास है। किंतु उनकी शिक्षानुरूप उन्हें काम के अवसर नही दिये जाते। पाथरपाट स्कूल में अध्यापन का अवसर मिलने के लिए रूमझुम द्वारा कई आवेदन दिये जाते हैं, केवल असुर समाज का होने के कारण उसके आवेदन को खारिज किया जाता है। विद्रोह और संघर्ष करने पर कंपनी स्थानिक युवाओं को अनिच्छा से काम पर लेती है। लेकिन वहाँ काम करनेवाले पूंजीपतियों के दलाल षडयंत्र के तहत रूमझुम एवं अन्य युवाओं का अपमान करते हैं। उनकी हर गलती पर जाति की दुहाई देते हैं। यही वजह है आदिवासी समाज के बच्चे काबिलियत के बावजूद बेरोजगारी का शिकार हों रहे हैं।

5) भ्रष्ट प्रशासन और पुलिस प्रताड़ना :–

आदिवासी समाज के विकास के लिए सरकार कई योजनाएँ बनाती है। कागजों पर विकास के नाम पर करोड़ो रूपए खर्च होते हैं। किंतु आदिवासी समाज के जीवनस्तर में कोई बदलाव नहीं आता । सरकारी योजनाओं को भ्रष्ट प्रशासन रूपी दीमक ने भीतर से खोखला किया है। ये सरकारी अफसर पूंजीपतियों ठेकेदारों की गुलामी करते हैं। कंपनी के हितों को सुरक्षित रखने का दायित्व इन्हीं का होता है। इन्हीं की कृपा और उदासीनता से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ प्राकृतिक दोहन करती है। इन अधिकारियों के सामने जबर्दस्ती खेती वसूल कर अवैध खनन करती है। यही वजह है भौरापाट एवं आसपास के लोगों द्वारा सरकार को दर्जनों दरख्वास्ते दी जाती है जिस पर कोई निर्णय नही लिया जाता। एग्रिमेंट के अनुसार बॉक्साईट निकालकर गड्ढे भरना अनिवार्य है, साथ ही स्थानिक लोंगों को सुविधाएँ देने का प्रावधान भी होता है। लेकिन प्रशासन आँख बंद कर कंपनी को शोषण करने के लिए खुली छूट देता है।

पुलिस प्रशासन की भी कंपनी के साथ सांठ – गांठ होती है। लोगों के विद्रोह और संघर्ष को दबाने का दायित्व इन्हीं पर होता है। प्रस्तुत उपन्यास में भी पुलिस प्रशासन असुर समाज के विरोध में काम करती है। उन्हें न्याय दिलाने की बजाय उन्हे ही कटघरे में खड़ी करती है। शिवदासबाबा और विधायक भी कटपुतली बनकर असुरों को धमकाती है। अपनी सारी शक्ति असुरों के आंदोलन को तोड़ने के लिए लगाती है। यही वजह है आंदोलन की तीव्रता को कम करने के लिए पुलिस डॉ. रामकुमार, लालचन, बीमार बालचन, रामचन, रूमझुम, सोमा, भीखा, गन्दूर आदि असुरो को रात के अंधेरे में गिरफ्तार करती है। वही संघर्ष समिति द्वारा दुबारा आंदोलन करने पर गोलियां बरसाती है। बालचन समेत 6 लोगों की लाशे वही गिर जाती है। मीडिया भी पुलिस के साथ मिलकर झूठी खबर फैलाती है। **जैसे ''तीसरे पेज पर दो कौलम का समाचार छपा था कि पाथरपाट में हुए पुलिस मुठभेड में छह नक्सली मारे गए। नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल । फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एस. पी. दारोगा की हत्याओं और किन – किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आंखों देखा विवरण। अंत मे इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशे उठा ले गए । पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है।** (पृ. 88)वैसे पुलिस तो जनता की सेवा और रक्षण करने के लिए होती है किंतु यहॉ तो पुलिस ही भक्षक बनकर असुर समाज के हक और अधिकार को रौंदती है। इतना ही नहीं बालचन दा जैसे असुर को षडयंत्र के तहत पागल बनाकर ही छोड़ती है। पुलिस प्रताड़ना से हर असुर आहत है। मिल – मालिकों से भी अधिक शोषण यहाँ पुलिस ही करती है।

6) अंधश्रध्दा :–

परंपरा से ही आदिवासी समाज अपनी सभ्यता, संस्कृति, रहन–सहन, जीवन पध्दति, मान्यताएँ आदि का निर्वाह करता आया है। आदिवासी संस्कृति कथा, कहानियों, गीतों में अंकित है। वे बड़े ही श्रद्धालू और संवेदनशील है। यही वजह है कि कुछ पारंपारिक रूढियों का बड़ी आस्था से वे निर्वहन करते हैं। धार्मिक आस्था वश कुछ अंधश्रध्दाओं को भी पालते हैं । उपन्यास में लेखक की घबराए हुए लालचन दा से भेंट होती हैं। घबराने का कारण जानने पर लेखक को हैरानी होती है, जैसे **''अब भी कुछ लोगों के मन में बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिचड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। इसलिए इस सीजन में मुडीकटवा लोग घुमते रहते हैं।'' (पृ.12)** दरअसल मुडीकटवा लोगों से बचते हुए ही लालचन दा भाग रहे थे। कुछ लोग फसल अच्छी आने की उम्मीद में इस अंधश्रध्दा को सच मानते हैं। कमटी गांव के बुधराम सिंह खेतवार तो बताते हैं कि देवी को जब बलि की जरूरत होती है गुफा से नगाड़े की आवाजे आती है। इसे देवी की आज्ञा समझकर 'पूजा' लाने के लिए हम जैसे लोग इलाके के बाहर निकलते हैं। इस तरह की अंधश्रध्दा के वशीभूत होकर ही अंबाटोली देवी थान पर लालचन दा के चाचा को 'पूज' दिया जाता है।

असुर समाज में कुछ प्रचलित मान्यताएँ है जिसका वहन पीढ़ी दर पीढ़ी यह समाज कर रहा है। तो तथाकथित लोगों द्वारा भी असुर समाज को भ्रमित किया जाता है। शिवदास बाबा कंठीधारी शुध्दि आंदोलन चलाकर भोले भाले असुर समाज को गुमराह करता है। काला रंग अशुभ होता है इस तरह की अफवा को फैलाते हैं। शिवदास बाबा स्वार्थी एवं कपटी आदमी है। अंधश्रध्दा के बहाने वह व्यापार का नया रास्ता खोजता है। काले रंग को अशुभ मानने से काले पशुओं की कीमतें अचानक कम हो जाती है, जिससे आसपास के गांवों के लोगों की आर्थिक स्थिति डावांडोल हो जाती है। **'जैसे, ''भगतों को प्रशासन से ज्यादा पिशाचों का भय था । वे यह समझने के लिए तैयार नहीं थे कि ये गाय– गुरु, मुर्गी, सुअर केवल पशु नहीं बल्कि उनकी जमा पूंजी थे, घरेलु बैंक के पासबुक। हारी – बीमारी शादी – ब्याह अन्य प्रयोजनों में यही काम आते हैं। किंतु शिवदास बाबा के एक चमत्कार ने इन घरेलू बैकों को एक झटके में दिवालिया कर दिया और मजे की बात तो यह कि इन्हें खबर तक नहीं हुई।'' (पृ.58)** असुर शिवदास बाबा के धार्मिक आतंक में फंस जाते हैं। अपनी डूबती आर्थिक स्थिति का भी उन्हें अहसास नहीं होता । उनकी नजर में तो बाबा अवतारी पुरूष है। लेकिन सच्चाई यह है कि व्यापारी कम दाम में पशुओं को खरीदकर कमिशन बाबा तक पहुंचाते हैं। अतः असुर समाज के भीतर फैलती अंधश्रध्दा भी उनके शोषण का एक कारण है।

7) लड़कियों का क्रय विक्रय :–

असुर समाज में लड़कियों के क्रय–विक्रय एवं शोषण की भयंकर समस्या विद्यमान है। कुछ स्वार्थी लोग लड़कियों को बहला–फुसलाकर, नौकरी का आमिष दिलाकर किसी धन्ना सेठ या जनान खाने में बेचते हैं। इन दलालों की नजर हमेशा मासूम लड़कियों पर होती है। बाजारों में ऐसे कई दलाल घूमते रहते हैं । सिंदजी नामक दलाल लोधमा की बेटी को दिल्ली में बेचता है। इसकी किसी को कानों कान खबर भी नहीं होती लेकिन लड़की ही जैसे तैसे पोस्टकार्ड भेजकर अपने अन्याय अत्याचार की कहानी सुनाती है, तो लोगों के सामने सिंहजी का भेद खुलता है। जैसे, **''न जाने दिल्ली के कौन से मुहल्ले की मालिशवाली दुकानदारिन के हाथों बेची गयी थी। थाना पुलिस हुआ। हम सब एस. पी. ऑफिस के सामने अनशन पर बैठे तो दिल्ली में छापा वापा पड़ा। बेटी सब वापस आयी है। तब ई सिंह जीवा का भेद खुला। उन्हीं लड़कियों के बयानपर सिंहजी बाप – पुत्ता समेत जेल की हवा खाने गये''** (पृ.31) इन दलालों की वजह से कई लड़कियाँ शोषण का शिकार होती है। गोनू उर्फ गणेश्वरसिंह राजपुत नामक डकैत भी अपने स्वार्थ के लिए कई औरतों का शोषण करता है।

कोयलबीघा में शिवदास बाबा का आश्रम विद्यालय है। लडकियों की शिक्षा के लिए यह स्कूल बनवाया है। किंतु बाबा के लिए यह अपनी गंदी हवस मिटाने की जगह है। लालचन दा की दो बेटियॉ कविता – नमिता भी इसी स्कूल में पढ़ती है। उनके साथ ही कई लड़कियों का बाबा द्वारा शोषण किया जाता है। पुलिस प्रशासन भी बाबा जैसे भोदुओं की गुलाम है। ऐसे में बच्चियों के माता–पिता को न्याय मिलना मुश्किल हो जाता है।

दरअसल वर्तमान समय में भी असुर समाज की समस्याओं का अंत नहीं हुआ है। बल्कि दिनों दिन उसमें बढ़ोत्तरी हो रही है। बाहरी समाज के हस्तक्षेप से उनकी जीवन पध्दति में बहुत ही बदलाव आया है । प्रकृति के सान्निध्य में हॅसता–खेलता असुर समाज अपने जल, जंगल, जमीन से बिछ़ड गया है। भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद ने असुरों की भूमि को बाजार का केंद्र बनाया है। सरकार बेच रही है और वह वस्तु के रूप में क्रय –विक्रय का साधन बन गया है। रणेंद्र ने इस उपन्यास के बहाने असुर समाज की समस्याओं का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।